International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 6.972 Volume 10, Issue 10, October 2023
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

आधुनिक काल में समाज सुधारक कबीर दास जी की विचारधारा

प्रतिभा वी[1] , डॉ. महेश राम आर्य (प्रोफेसर)[2]
हिन्दी विभाग
[1,2] सनराइज यूनिवर्सिटी , अलवर, राजस्थान

शोध सारांश :-

कबीर के उद्भव-काल की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक परिस्थितियों का अवलोकन इस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि इन परिस्थितियों का कबीर के कवि व्यक्तित्व के निर्माण में पर्याप्त हाथ रहा है। स्वर्गीय 'दिनकर' की यह टिप्पणी उचित ही है कि 'हर कवि अपने युग का ही कवि होता है और साथ ही यह भी कि हर युग अपने कवि की प्रतीक्षा किया करता है। इसीलिए साहित्य मूल रूप से शाश्वत और कालजयी अवश्य हो, किन्तु समग्रतः वह काल-सापेक्ष और देश-सापेक्ष ही रहता है।' कबीर दास ऐसे कवि जो संत, भक्त, समाज सुधारक और फकीर थे। जिनकें जैसा आज तक न कोई हुआ और ना ही शायद होगा। कबीर दास समाज सुधारक के साथ ही हिंदी साहित्य के एक महान समाज कवि थे । उन्होंने अनोखा सत्य के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन तथा कल्याण किया। जिससे मानव कुसंगति, छल कपट, निंदा, अंहकार, जाति भेदभाव, धार्मिक पाखंड आदि को छोड़कर एक सच्चा मानव बल सकता है। उन्होंने समाज में चल रहे अंधविश्वासों, रूढ़ियों पर करारा प्रहार किया। कबीर शांतिमय जीवन बीताते थे और वे अंहिसा, सत्य, सदाचार आदि को अपने जीवन में अपनाया और दूसरो को भी सिख देते थे। उनका सभाव क्रांतिकारी प्रवृत्ति होने के कारण उन्होंने ऊंच-नीच तथा समाज में जाति-पाति के भेदभाव का विरोध किया। आधुनिक काल का समाज में हिंदू पर मुस्लिम आतंक फैला हुआ था। उन्होंने ऐसा मार्ग अपनाया जिससे समाज में फैली बुराईयों को दूर किया जा सके। कबीर ने अपनी सारा जीवन तथा साहित्यों के आधार पर मानव जाति को एक अच्छा संदेश दिया। जिस संदेश को हमे अपने जीवन में अपना चाहिए। उनके साहित्य में समाज सुधारक की भावना है। जिसे इस प्रकार देख सकते है|

संकेत शब्द :- कबीर, उद्भव-काल, सामाजिक, धार्मिक इत्यादि|

पृष्ठभूमि :-

कबीर ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की। उन्होंने धैर्य, सहिष्णुता, कर्मयोग, गुरु का सम्मान, प्रेम, मानवता, आत्मा की पवित्रता, दीन-दुखियों की सेवा, नैतिकता के पालन को मानवीय कर्त्तव्य माना। कबीर ने 'माली सींचे सौ घडा' के माध्यम से धैर्य के साथ कर्म को महत्त्व दिया। उन्होंने 'भृगु मारी लात' द्वारा क्षमा के महत्त्व तथा 'माटी कहे कुम्हार से' द्वारा सहिष्णुता का पाठ पढाया। कबीर सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे। उन्होंने समाज को सचेत किया कि निर्बल को मत सताओ नहीं तो उसकी हाय से सब कुछ नष्ट हो जायेगा –

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।

मुई खाल की श्वांस सौं लौह भसम हो जाय।।

तत्कालीन सामाजिक अव्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है "कबीर के समय में समाज की दशा बड़ी शोचनीय थी। हिन्दू और मुसलमान इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडम्बर बढ़ता जा रहा था। दोनों ही असत्य एवं मिथ्यात्व के पुजारी होते जा रहे थे। सभी क्षेत्रों में काली लकीरें दिखाई देने लगी थीं। इसी के फलस्वरूप जाति तथा देश में सर्वत्र अस्त व्यस्तता और विशृंखलता फैली हुई थी। "इस प्रकार से कबीर का युग हर प्रकार अस्वस्थ और दिशाहीन हो गया। इसे एक युगदृष्टा और युग प्रवर्तक की अपेक्षा थी।

कबीर का सुधारक व्यक्तित्व :-

कबीर केवल सन्त कवि ही नहीं थे, अपितु वे महान युगदृष्टा और सच्चे मार्गदर्शक भी थे। कबीर के सुधारवादी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार विकले ने लिखा है-

यद्यपि कबीर ऊपरी धार्मिक सुधार तक ही सीमित हैं, तथापि भारतीय धर्म के अन्तर्गत दर्शन, नैतिक आचरण एवं कर्मकाण्ड दोनों का समावेश है।" इसी प्रकार श्री प्रकाश गुप्त ने कबीर के सुधारक रूप को रेखांकित करते हुए यह उद्गार व्यक्त किये हैं कि, "यद्यपि सुधार करना या नेतागिरी की प्रवृत्ति फक्कड़ मस्तमौला सन्त कबीर में नहीं थी, किन्तु वे समाज के कूड़ा-कर्कट या कुरूप को निकाल फेंकना चाहते थे। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वे स्वतः सुधारक बनना चाहते हुए भी राम-दिवाने थे। कबीर को सुधारक का पद प्राप्त हो ही जाता है। वास्तव में तो वे मानव के दुःख से उत्पीड़ित हो उसकी सहायता के लिए चले। जनता के दुःख-दर्द और उसकी वेदना सरस्वती बही थी।" सुधारक कबीर के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का विवेचन इस प्रकार से प्रस्तुत है-

सामाजिक सुधार—कबीर ने जहाँ धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र में सुधार लाने प्रयास किया है, वहीं उन्होंने समकालीन जीवन में परिव्याप्त, जातिगत, ऊँच-नीच और भेद भाव की भावना, छुआछूत की भावना, दुराचार की समस्या, मद्यपान और मांस-भक्षण की कुप्रवृत्तियों आदि पर भी तीव्र प्रहार किये हैं। समाज-सुधार की दृष्टि से कबीर की उक्तियाँ इतनी अधिक मार्मिक हैं कि वे कबीरकालीन समाज पर ही नहीं, अपितु आधुनिककालीन सामाजिक कुरीतियों पर भी पूर्णतः चरितार्थ होती हैं|

(क) छुआछूत का विरोध- छुआछूत की समस्या पर यद्यपि तीव्र कुठाराघात आधुनिक काल में गांधी जी द्वारा किया गया, किन्तु इस दिशा में कबीर भी पीछे नहीं रहे, उन्होंने ब्राह्मण वर्ण द्वारा छुआछूत का प्रपंच खड़ा करने की भर्त्सना करते हुए कहा था-

'काहे को कीजै पांडे छोति विचार छोतहिं से अपना संसार

हमरे कैसे लोहू तुम्मरे कैसे दूध तुम कैसे वांभन पांडे हम कैसे सूद

छोति-छोति करत तुम्ह हो जाए तो गुव्वास काए को आए।'[1]

(ग) जातिगत ऊँच- नीच का विरोध-छुआछूत का विरोध करने के साथ-साथ कबीर ने जातिगत ऊँच-नीच की भावना पर भी तीव्र प्रहार किया है। एक ओर तो उन्होंने अपनी इस प्रकार की उक्तियों से मानव मात्र की समानता का प्रचार किया कि-

'साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'

'जाति-पाँति पूछै नहिं कोइ, हरि को भजै सो हरि को होइ।'

तो दूसरी ओर उन्होंने कटुतापूर्वक ब्राह्मणों के ब्राह्मणत्व को चुनौती देते हुए यहाँ तक फटकारा कि यदि तुम वास्तव में ब्राह्मण होने के कारण हम नीची जातियों से श्रेष्ठ और महान हो तो फिर तुम्हारा जन्म-मार्ग भी हमारे समान क्यों है? क्यों नहीं तुम दूसरे मार्ग से उत्पन्न हुए हो?

'जो तू बांभन बांभनी जाया।

और राह है क्यों नहीं आया ॥ '

(ख) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर बल- समाज-सुधारक के रूप में कबीर का योगदान इस दृष्टि से भी बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है कि उन्होंने अपने समकालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की खाई पाटने का प्रयास किया है। उन्होंने दोनों ही धर्मावलम्बियों की साम्प्रदायिक कट्टरता का विरोध और उपहास करते हुए कहा था-

'अरे इन दोऊ राह न पाई।

हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।'[2]

(ग) हिंसा का विरोध- कबीरदास ने अपने युग की हिंसा का घोर विरोध किया है। हिंसा करने वाले हिन्दू-मुसलमानों की निन्दा करते हुए कबीरदास ने कहा कि-

वै हलाल, वै झटका मारै, आगि दोऊ घर लागि।

तथा—

बकरी पत्ता खात है, ताकी काढ़ी खाल।

जो नर बकरी खात है ताको कौन हवाल॥

2. मूर्ति पूजा आदि बाह्याडम्बरों का विरोध— कबीरदास ने किसी प्रकार की मूर्ति-पूजा, सिर मुड़ाने, तिलक छाप लगाने, माला जाप करने आदि की कटु आलोचना करते हुए बहुत बड़ा विरोध प्रकट किया। माला जपने वालों का विरोध करते हुए उन्होंने कहा-

माला फेरत जुग भया, गया न मनका फेर।

करका मनका डारि दे, मनका मनका फेर॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।

मनुआ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

इसकी अपेक्षा कबीर ने चक्की की पूजा को उत्तम बताते हुए कहा है-

'पाहन पूजै हरि मिलें तो मैं पूजूँ पहार।

या ते तो चाकी भली, पीस खाए संसार॥'

इसी प्रकार सिर मुंडाने का विरोध करते हुए उनके उद्गार हैं कि-

मूँड मुड़ाये हरि मिलें सब कोइ लेह मुड़ाया।

बार-बार के मूड़ते भेड़ न बैकुण्ठ जाय ॥[3]

मस्तक पर धार्मिक चिन्ह के रूप में तिलक छाप लगाने की प्रथा का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं-

'बैस्नों भया तो क्या भया बूझा नहीं विवेक,

छापा तिलक लगाय कर, दाधा लोक अनेक।'[4]

3. प्रेम और ज्ञान में समन्वय– कबीरदास ने अपने युग के अमानवीय तत्त्वों का विरोध करते हुए परस्पर मेल-मिलाप और प्रेम का जीवन बिताने का उपदेश दिया। वे ज्ञान को प्रेम से ही सम्भव मानते हुए कहते हैं-

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय ॥[5]

निष्कर्ष-

आज 21वी सदी के विश्व में भारत जहाँ अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, वहाँ स्थानीय समस्याएँ, नक्सलवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद के दौर में एक 'समग्र भारतीय व्यक्तित्व' के रूप में कबीर हमारे व्योम में जाज्वल्यमान नक्षत्र् हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के लिए लिखा है, ''वे मुसलमान नहीं थे। हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वैष्णव होकर भी वे वैष्णव नहीं थे। योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान् के नरसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नरसिंह की भाँति वे असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिन्दु पर अवतरित हुए थे, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर भक्ति मार्ग।'' अकबर के दरबारी उर्फी ने उनके बारे में कहा है, ''ऐसे रहो अच्छे और बुरों के साथ, ओ ! उर्फी, कि जब तुम्हें मौत आए, मुसलमान तुम्हारे शव को पाक पानी से नहलाये और हिन्दू उसका अग्नि संस्कार करें।'' यह कबीर का ही युग बोध है कि वे बीच बाजार में हाथ में जलता हुआ मुराडा लिये खडे हैं और सत्य की खोज में समाज के अग्रदूत बने हैं –

हम घर जारा आपना, लिए मुराडा हाथि।

अब घर जालौ तास का, जो चलै हमारे साथी ।।

भारतीय परम्परा में वे आज जुझारू प्रेरणा के प्रतीक हैं एवं मानवता तथा भारतीयता के सच्चे पोषक हैं।

संदर्भ- सूची :-

1. कबीर वाणी सुधा, सम्पादक पारसनाथ तिवारी, 1972.
2. कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक श्यामसुन्दर दास नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित.
3. कबीर ग्रन्थावली, सं० डॉ. माता प्रसाद गुप्त, साहित्य भवन, प्रा०लि० के.पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1985.
4. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, 1 बी नेताजी. सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 1999.
5. कबीर वचनावली, अयोध्या सिंह हरिऔध, ना०प्र० सभा, काशी, 2015 विक्रमी.